بسم الله الرحمن الرحيم

ما اٰتاكم الرسول فخذوه وما نهاكم عنه فانتهوا

جو رسول اللہ ﷺ دیں وہ لے لو اور جس سے روکیں رک جاؤ۔ (پ ۲۸، ع ۴)

من احدث في امرنا هذا ما ليس منه فهو رد (متفق عليه)

جو ہمارے دین میں نیا کام جاری کرے جو اس سے نہ ہو وہ مردود ہے

(مشکوۃ باب الاعتصام ص ۲۷)

मसला

उर्स और ग्यारहवी



लेखक

हाफिज़ अब्दुल्लाह साहब मुहद्दिस रोपड़ी रह

अल किताब इंटरनेशनल

पूरी तरह विरुद्ध हैं।

यह पुस्तिका इस उम्मीद के साथ प्रकाशित की जा रही है कि इससे बिदआत व ख़ुराफ़ात की हक़ीक़त लोगों पर स्पष्ट होगी और उसकी रौशनी में लोग अपना सुधार करेंगे।

दुआ है कि अल्लाह तआला उसे लाभकारी बनाए और लेखक और प्रकाशक को सवाब से नवाज़े।

—रफ़ीक़ अहमद सलफ़ी

मसला ग्यारहवीं

इस नाम की हमें एक पुस्तिका मिली जो मौलवी मुहम्मद शरीफ़ नूरी लाहौर की लिखी हुई है। हमने उसे शुरू से आख़िर तक देखा। पृष्ठ चार से ग्यारहवीं का सुबूत शुरू होता है। लिखा है कि अल्लामा इमाम शाफ़ई रह० अपनी किताब "क़ुर्रतुन्नाज़िरा" के पृष्ठ 11 पर फ़रमाते हैं कि

> "ज़िक्र याज़दहम हज़रत ग़ौस सक़लैन रज़ि० बूद इरशाद शुद कि असल याज़दहम आीं बूद कि हज़रत ग़ौस समदानी बतारीख़ याज़दहम रबीउल आख़िर फ़ातिहा चहलम नबी करीम सल्ल० करदा बूदन्द। आं नियाज़ आं चुनां मक़बूल व मतबूअ इफ़्ताद कि दर हर माह बतारीख़ याज़दहम रसूल मक़बूल सल्ल० मुक़र्रर फ़रमूदंद व दीगर इत्तिबा हज़रत ग़ौस पाक बतक़लीदवे याज़दहम मे करदन्द। आख़िर रफ़्ता रफ़्ता याज़दहम हज़रत महबूब सुब्हानी मशहूर शुद अलहाल मरदम फ़ातिहा हज़रत शां दर याज़दहम मे कुनद व तारीख़ विसाल हज़रत महबूब सुब्हानी हफ़्त दहम रबीउस्सानी बूद।"

अनुवाद : "हज़रत महबूब सुब्हानी क़ुतुब रब्बानी अब्दुल क़ादिर जीलानी रह० की ग्यारहवीं शरीफ़ का ज़िक्र था। इरशाद हुआ कि ग्यारहवीं शरीफ़ की असल वजह यह थी कि हज़रत ग़ौस समदानी रह० हुज़ूर पुरनूर पैग़म्बरे ख़ुदा अहमद मुजतबा सल्ल० के चालीसवें का ख़त्म शरीफ़ ग्यारह माह रबीउल आख़िर को किया करते थे। वह नियाज़ इतनी लोकप्रिय हुई कि इसके बाद आप हर महीने की ग्यारहवीं तारीख़ को ही नबी करीम सल्ल० का ख़त्म शरीफ़ और नियाज़ दिलाने लगे। आख़िर धीरे धीर यही नियाज़ ग़ौस पाक की ग्यारहवीं महशूर हो गई। आजकल

लोग आपका उर्स शरीफ़ भी ग्यारह तारीख़ को ही करते हैं यद्यपि आपकी वफ़ात की तारीख़ सत्रह रबीउल आख़िर है।"

मालूम हुआ कि ग्याहवीं शरीफ़ असल में हुज़ूर पाक सल्ल० का उर्स मुबारक है जो ग़ौस पाक की तरफ़ मन्सूब हो गया।

जवाब

पूरी पुस्तिका में यही एक रिवायत ग्यारहवीं के सुबूत में पेश की है मगर यह इतना बड़ा आरोप है कि अगर लेखक ने इससे तौबा न की तो उनके ख़ात्मे का ज़बरदस्त ख़तरा है। इमाम शाफ़ई रह० ने न कोई किताब फ़ारसी में लिखी और न यह किताब उनकी है। इसके अलावा इमाम शाफ़ई रह० दूसरी सदी हिजरी में हुए और शाह अब्दुल क़ादिर जीलानी रह० छठी सदी हिजरी में। तो फिर इमाम शाफ़ई रह० की किताब में उनका ज़िक्र किस तरह आ गया? यह कितना झूठ पर झूठ है फिर फ़ारसी इबारत का अनुवाद भी ग़लत किया है। इसमें डबल ग़लती यह है कि फ़ातिहा चहलम नबी करीम सल्ल० करदा बूदन्द" का अनुवाद किया है कि चालीसवें का ख़त्म शरीफ़ हमेशा ग्यारह माह रबीउल आख़िर को किया करते थे यद्यपि फ़ारसी में "करदा बूदन्द" के मायना हमेशगी के नहीं। मालूम होता है कि मौलवी शरीफ़ को अरबी क्या फ़ारसी भी नहीं आती। "करदा बूदन्द" का मायना है 'किया था' न कि 'हमेशा करते थे।' फिर इसमें यह भी एक झूठ है कि ग्यारहवीं को उर्स बना दिया यद्यपि उर्स साल के साल होता है और ग्यारहवीं हर माह होती है। जब इस किताब की बिस्मिल्लाह ही ग़लत है और झूठों का पुलिन्दा है तो बाक़ी को भी इसी पर मान लें :

इसके बाद पृष्ठ पांच पर शैख़ अब्दुल हक़ मुहद्दिस देहलवी की किताब "मा सब्त बिल सुन्नह" पृष्ठ 68 के हवाले से ज़िक्र किया है कि हमारे देश में ग्यारहवीं शरीफ़ का दिन मशहूर है और हमारे मशाइख़ जो

पीर पीरान की औलाद से हैं के निकट परिचित मशहूर है।

जवाब

यह बात स्पष्ट है कि किसी बात के मशहूर होने से वह साबित नहीं होती। अरब में बुतों की पूजा मशहूर थी वे ग़ैरुल्लाह की इबादत करते थे। बैतुल्लाह शरीफ़ में तीन सौ साठ बुत थे, इबराहीम अलैहिस्सलाम और इसमाईल अलैहि० की तस्वीरें बना रखी थीं। उनके हाथों में क़िस्मत मालूम करने के फ़ाल के तीर थे इसके बावजूद मिल्लते इबराहीमी का दावा करते थे। रसूलुल्लाह सल्ल० ने फ़तह मक्का के मौक़े पर फ़रमाया कि ख़ुदा उन लोगों को विनष्ट करे। उन लोगों ने उन पर तोहमत बांधी है। उन्होंने कभी भाग्य मालूम करने के लिए तीर इस्तेमाल नहीं किए। देखें बुख़ारी पहला भाग बाब 'वत्त-ख़-ज़ल्लाहु इबराही-म ख़लीला' (पृ० 473) तो किसी बात का फैल जाना या मशहूर हो जाना कोई दलील नहीं। ईसाई भी तो कहते हैं कि मसीह अलैहि० हमारे गुनाहों के कफ़्फ़ारा में सूली चढ़ गए हैं। यद्यपि यह सफ़ेद झूठ है। इसी तरह क़ुरआन मजीद पारा चौथा पहले रुकूअ में है। यहूद कहते हैं : 'इन्नल्लाह अहद इलैना...' (अलआयत)

अर्थात ख़ुदा की तरफ़ से हमें वसीयत है कि हम किसी रसूल के लिए ईमान न लाएं जब तक वह हमारे पास कोई ऐसी क़ुरबानी न लाए जिसको आग खा जाए। मतलब उनका यह था कि मुहम्मद सल्ल० ने हमें यह निशानी नहीं दिखाई। इसलिए हम उन पर ईमान नहीं लाते यद्यपि यहूद ने यह झूठ मशहूर कर रखा था। अल्लाह की तरफ़ से ऐसी कोई वसीयत न थी। मतलब यह कि इस प्रकार के बहुत से झूठे क़िस्से मशहूर हो जाते हैं जिन पर कोई दलील नहीं। ऐसे ही ग्यारहवीं समझ लें।

इसके अलावा मा सब्त बिस्सुन्नह के अगले पृष्ठ पर इसका खंडन किया है। अतएव असल शब्द यह हैं :

अनुवाद : ज़माना सल्फ़ में उर्स व ग्यारहवीं का नाम व निशान न था पिछले लोगों ने इसको अच्छा समझ लिया है।

हदीस में है सल्फ़ का ज़माना अच्छा ज़माना है। तो उनके तरीक़े के ख़िलाफ़ दीन में कोई नया काम दाख़िल करना उसमें कभी भलाई नहीं हो सकती। चाहे लोग कुछ समझ लें। मौलवी मुहम्मद शरीफ़ को बेइमानी की आदत बहुत है। एक बात ज़िक्र कर जाते हैं और इसी जगह उसका खंडन होता है उसका नाम तक नहीं लेते। अफ़सोस!

ये ठहरे हैं अब दीन के रहनुमा
लक़ब उनका है वारिस अंबिया

इसके बाद इस पुस्तिका के पृष्ठ 6 पर मा सब्त बिस्सुन्नह पृ० 127 के हवाले से लिखा है कि शैख़ अब्दुल वहाब क़ादरी अपने उर्स में ग्यारहवीं तारीख़ का ख़्याल रखते थे।

जवाब

यह सफ़ेद झूठ और आरोप है। मौलवी मुहम्मद शरीफ़ इसी तरह झूठ बोल बोल कर लोगों को धोखा देते हैं। अगर हिम्मत है तो असल किताब से दिखाएं वरना ग्यारहवीं छोड़ दें। इसके अलावा शरीअत में अपनी तरफ़ से कोई तारीख़ निश्चित करके उसकी हिफ़ाज़त करना ही तो बिदअत है जो कि शरअन हराम है। अब्दुल वहाब बेचारे की क्या हैसियत है कि वह शरीअत में हस्तक्षेप करे। फिर उर्स तो साल के बाद होता है। ग्यारहवीं का इससे क्या संबंध? यहां तक ग्यारहवीं का बयान ख़त्म हुआ।

नतीजा यह निकला कि ग्यारहवीं बिल्कुल आरोप और झूठ है। और शरीअत में यह बिदअत और हराम है।

उर्स

इसके बाद इस पुस्तिका में शामी पहले भाग बाब ज़ियारतुल क़ुबूर के हवाले से उर्स का सुबूत पेश किया है। इब्ने अबी शीबा रह० से रिवायत है कि नबी करीम सल्ल० हर साल उहुद के शहीदों की क़ब्रों पर तशरीफ़ ले जाया करते थे। और तफ़्सीर कबीर और तफ़्सीर दुर्रे मन्सूर के हवाले से ज़िक्र किया है कि हुज़ूर सल्ल० हर साल उहुद के शहीदों की क़ब्रों पर जाया करते थे और फ़रमाया करते थे।

سلام علیکم بما صبرتم فنعم عقبی الدار (شامی جلد اول)

अनुवाद : "तुम पर सलाम हो इस कारण कि तुमने सब्र किया तो अच्छा है अंजाम घर का।"

और चारों ख़लीफ़े भी ऐसा ही करते थे।

जवाब

इस रिवायत की एक तो सनद का ज़िक्र नहीं किया। सहीह है या ज़ईफ़ है। इब्ने अबी शीबा ऐसी किताब है कि इसकी कोई रिवायत बिना मुहक़्क़िक़ के लेनी जाइज़ नहीं। देखें उजाला नाफ़िआ पृ० 7 लेखक शाह अब्दुल अज़ीज़ साहब मुहद्दिस देहलवी मरहूम और तफ़्सीर कबीर और दुर्रे मन्सूर इससे भी नीचे दर्जे की हैं। तो ऐसे हवालों से मसला साबित नहीं होता जब तक इसकी सेहत व कमज़ोरी बयान न हो। दूसरे इसमें प्रचलित उर्स का कोई ज़िक्र नहीं। क़ब्रों की ज़ियारत का ज़िक्र है और इन पर सलाम डालने का ज़िक्र है जो मसनून तरीक़ा है। क़ब्रों की सिर्फ़ ज़ियारत को कोई नहीं रोकता। न कोई इसमें मतभेद है अब भी हाजी लोग मस्जिदे नबवी की ज़ियारत करने को जाते हैं। वे शहीदों की क़ब्रों पर और

जन्नतुल बक़ीअ और रोज़ाए मुबारक की साल के साल ज़ियारत[1] करते हैं मगर प्रचलित उर्स का नाम व निशान नहीं, न ख़ैरुल क़ुरून से इसका सुबूत मिलता है तो इस रिवायत को उर्स मुरव्वजा[2] के सुबूत में पेश करना सरासर ग़लत है।

इसके बाद इस पुस्तिका के पृष्ठ सात पर शाह शरफ़ुद्दीन के कथनों के हवाले से यह रिवायत ज़िक्र की है कि रसूलुल्लाह सल्ल० की वफ़ात से ग्यारह दिन बाद जब हज़रत सिद्दीक़े अकबर रज़ि० ख़लीफ़ा हुए तो बारहवें दिन आपने बहुत सा खाना पकवाया ताकि उसका सवाब हुज़ूर अकरम सल्ल० की रूह की नज़र करें।

1. रसूलुल्लाह सल्ल० के साल के साल तशरीफ़ ले जाने की रिवायत अगर साबित हो जाए तो इसमें भी यही हिक्मत थी कि जो लोग साल के साल मदीना आते हैं वे उहुद के शहीदों की क़ब्रों की ज़ियारत से ख़ाली न हो जाएं क्योंकि जन्नतुल बक़ीअ मस्जिदे नबवी के निकट है। इसकी ज़ियारत आसान है उहुद के शहीदों की तुलना में। वह कई मील बाहर है इस बिना पर इसमें सुस्ती का ख़तरा था तो आप सल्ल० ने साल के साल ज़ियारत का इसी तरफ़ ध्यान दिला दिया मानो साल के साल मसनून तरीक़ा नहीं बल्कि मदीना आने वालों को ध्यान दिलाने के लिए है। वरना जन्नतुल बक़ीअ में भी साल के साल तशरीफ़ ले जाते उहुद वालों को ख़ास क्यों किया?

2. प्रचलित उर्स में मेले की तरह चहल पहल होती है दूर दूर से दुनिया आती है अखट का आयोजन है मर्द व औरत बन ठनकर शामिल होते हैं जिससे कई तरह की बुराइयां और अशलीलता अस्तित्व में आती हैं बेपर्दगी का प्रदर्शन होता है मुजरे और क़व्वालियां होती हैं। क़ब्र को सज्दे होते हैं नज़रें नियाज़ें मानी जाती हैं। चढ़ावे चढ़ाए जाते हैं मुरादें मांगी जाती हैं इसके ख़िलाफ़ मसनून ज़ियारत में सिर्फ़ मौत की याद होती है मौतों के लिए सलाम और दुआ होती है। कहां प्रचलित उर्स और कहां मसनून ज़ियारत।

जवाब

यह रिवायत बिल्कुल बोहतान और झूठ है। और हज़रत अबूबक्र सिद्दीक़ रज़ि० पर आरोप है। किसी विश्वसनीय तारीख़ या हदीस की किसी विश्वस्त किताब में इसका नाम व निशान तक नहीं। ये लोग इसी तरह झूठी रिवायतें बना बनाकर लोगों को बहकाते और गुमराह करते हैं। खुदा महफ़ूज़ रखे। आमीन

इसके बाद इस पुस्तिका के पृष्ठ आठ पर हज़रत शाह वलीयुल्लाह रह० के नाम से लिखा है कि इसी कारण से है। मशाइख़ के उर्सों की हिफ़ाज़त और उनकी क़ब्रों की ज़ियारत और फ़ातिहा पढ़ना और सदक़ा देना व आयोजन करना और उनके निशानात व औलाद की इज़्ज़त करना।

जवाब

शाह वलीयुल्लाह साहब की किसी किताब का हवाला नहीं दिया। वैसे ही लिख दिया है। इसके अलावा शाह वलीयुल्लाह साहब ने लोगों के काम करने का ज़िक्र किया है। और किसी के करने से कोई चीज़ जाइज़ नहीं हो जाती। जब तक शरअ से साबित न हो।

इसके बाद शाह अब्दुल क़ुद्दूस गंगोही के कथन का ज़िक्र किया है कि पीरों के उर्सों का सिलसिला मशाइख़ के तरीक़े पर सफ़ाई और समाअ से जारी रखें।

जवाब

अब्दुल क़ुद्दूस बेचारे की क्या हैसियत है कि शरीअत में दख़ल दें।

इसके बाद शाह अब्दुल अज़ीज़ रह० के फ़तवा अज़ीज़िया पृ० 111

के हवाले से लिखा है कि फ़क़ीर एक साल में दो मज्लिसें अपने घर में करता है। एक मज्लिस हुज़ूर अलैहिस्सलाम की वफ़ात के ज़िक्र में। दूसरी हसनैन रज़ि० की शहादत के ज़िक्र में।

जवाब

मौलवी मुहम्मद शरीफ़ को मालूम नहीं कि शाह वलीयुल्लाह रह० और शाह अब्दुल अज़ीज़ रह० के घराने में पत्नी की सहनक[1] और इस प्रकार की और बिदअतें भी होती थीं जो कुछ बेगमात मुग़लिया ख़ानदान की जारी की हुई थीं और यह सर्व सहमति से बुरी हैं। जूं जूं क़ुरआन व हदीस की रौशनी उनके ख़ानदान में आती गई इस प्रकरी की बिदअतें निकलती गईं। उनके ख़ानदान में विधवा की शादी भी नहीं करते थे। शाह इसमाईल शहीद रह० ने इस रस्म को मिटाया। विस्तार से जानने के लिए मरहूम सय्यद अहमद बरेलवी और शाह इसमाईल शहीद की आत्म कथाएं पढ़ें।

इसके बाद इसी पुस्तिका के पृष्ठ 10 पर उसूल की किताबों के हवाले से लिखा है : "المستحب ما احبه العلماء"

अर्थात मुस्तहब वह काम है जिसको उलमा प्रिय समझें।

जवाब

यह बिल्कुल बोहतान है उसूल की किताबों में यह कोई उसूल नहीं

1. हज़रत फ़ातिमा रज़ि० के नाम से औरतों की आम दावत होती है जिसमें एक निकाह वाली शामिल होती हैं जिसका नूर जहां को शर्मिन्दा करना उद्देश्य था। क्योंकि उसका दूसरा निकाह था उसका नाम बीवी की सहनक था बीवी से तात्पर्य हज़रत फ़ातिमा रज़ि० हैं शर्मिन्दा होने वाली बेचारी मर गई मगर बीवी की सहनक बराबर जारी रही।

लिखा उसूल की किताबों में दलीलें कुल चार लिखी हैं। क़ुरआन, हदीस, इज्माअ और क़यास। यह ज़ाहिर बात है कि ग्यारहवीं और उर्स पर न क़ुरआन व हदीस है और न इज्माअ है और न क़यास है बल्कि मनगढ़त रिवायतें पेश की जा रही हैं जिनका ज़िक्र ऊपर आ चुका है।

इसी पृष्ठ पर दो हदीसें लिखी हैं।

पहली हदीस :

"ماراٰہ المومنون حسنا فهو عند الله حسن"(١)

अर्थात जिस काम को मोमिन अच्छा जानें वह अल्लाह के निकट भी अच्छा है।[1]

दूसरी हदीस :

"لا تجتمع امتی علی الضلالة"

मेरी उम्मत का इज्माअ गुमराही पर नहीं हो सकता।

जवाब

ये दोनों रिवायतें इज्माअ की दलील हैं लेकिन ग्यारहवीं और उर्स पर सिर्फ़ बरेलवियों का अमल है, जो शिर्क व बिदअत में डूबे हुए हैं। इज्माअ कहां?

इसके बाद पृष्ठ ग्यारह पर देवबन्दियों को आरोप दिया है कि उनके निकट ग्यारहवीं (क़ुरआन पढ़ा हुआ हो या सदक़ा) हराम है। और हिन्दुओं के हाथ की पकी हुई मिठाई और कचौरियां और पूरियां उनके ख़ास निर्धारित त्यौहारों की तोहफ़ा के तौर पर निःसन्देह जाइज़ है।

(फ़तावा रशीदिया हिस्सा अव्वल, पृ० 95 व दूसरा भाग, पृ० 132)

1. यह हदीस नहीं हज़रत अब्दुल्लाह बिन मसऊद रज़ि० का कथन है देखिए मक़ासिद हसना लिल सख़ावी।

जवाब

फ़िक़्ह की किताबों में कुफ़्फ़ार के त्यौहारों का सम्मान हराम लिखा है। फिर उलमा देवबन्द तोहफ़ा के तौर पर उन मिठाइयों को जाइज़ किस तरह कह सकते हैं। अगर किसी को भूल लग गई हो तो ख़ुदा माफ़ करे।

बिदअत और उसकी क़िस्में

इसके बाद इस पुस्तिका के पृष्ठ 12 पर बिदअत की बहस लिखी है एक बिदअत हसना (अच्छी बिदअत) होती है और एक सय्यिअह (बुरी)।

जवाब

शरअ में बिदअत हसना का वजूद ही नहीं क्योंकि हदीस में साफ़ शब्द आए हैं "कुल्लु बिदअतिन ज़लालतिन" अर्थात हर बिदअत गुमराही है। हां शाब्दिक मायना की दृष्टि से बिदअत हसना हो सकती है। जैसे हज़रत उमर रज़ि० ने तरावीह को कहा "नेमतुल बिदअतिन हाज़ा" अर्थात यह अच्छी बिदअत है यद्यपि रसूले अकरम सल्ल० ने तीन दिन पढ़ाई थीं तो फिर बिदअत न हुई लेकिन मुद्दत तक चूंकि बन्द रहीं और हज़रत उमर रज़ि० ने उनको नए सिरे से जारी किया तो इस लिहाज़ से आपने शाब्दिक मायनों में नज़र करते हुए उनको बिदअत कहा और यही इस हदीस के मायना हैं जो मिश्कात शरीफ़ बाबुल इल्म के हवाले से मौलवी मुहम्मद शरीफ़ ने इस पुस्तिका में ज़िक्र की है कि :

"من سن فی الاسلام سنة حسنة فله اجرها (الحديث)

अर्थात जो इस्लाम में अच्छा तरीक़ा जारी करे उसके लिए उसका सवाब है, और जो उस पर अमल करें उनका भी सवाब है। बिना इसके कि उनका सवाब कम हो।

अर्थात जो तरीक़ा शरअ में साबित हो उसको नए सिरे से जारी करे तो उस पर सवाब है। इसका अधिक स्पष्टीकरण निम्न हदीस से होता है।

عن بلال بن الحارث المزنی قال قال رسول الله ﷺ

من احییٰ سنة من سنتی قد امیتت بعدی فان له من الاجر مثل

اجورمن عمل بها من غير ان ينقص من اجورهم شيئا ومن ابتدع بدعة ضلالة لا يرضاها الله ورسوله كا ن عليه من الاثم مثل اثام من عمل بها لاينقص ذلک من اوزارهم شيئا. رواه الترمذی ورواه ابن ماجه عن كثير بن عبد الله بن عمرو عن ابيه عن جده .(مشكوة، باب الاعتصام بالكتاب والسنة ص ٣٠)

अनुवाद : हज़रत बिलाल बिन हारिस रज़ि० से रिवायत है कि रसूलुल्लाह सल्ल० ने फ़रमाया, जो व्यक्ति मेरी सुन्नत से कोई सुन्नत जो मेरे बाद मुर्दा हो गई हो ज़िंदा करे उसके लिए उन लोगों के सवाबों के जैसा है जो उस पर अमल करें बिना इसके कि उनके सवाबों से कुछ कमी करे। और जो व्यक्ति गुमराही की बिदअत आरंभ करे (जिसका शरअ में सुबूत न हो) जिसको खुदा और उसका रसूल सल्ल० पसन्द नहीं करते, होगा उस पर गुनाह उन लोगों के गुनाहों जैसा जो उस पर अमल करें साथ उसके, नहीं कम करेगा यह उनके गुनाहों से कुछ। इसको तिर्मिज़ी रह० ने रिवायत किया और इब्ने माजा रह० ने कसीर बिन अब्दुल्लाह बिन अम्र रज़ि० के बयान से बयान किया। कसीर रह० ने अपने बाप से सुना। बाप ने कसीर के दादा (औफ़) से सुना।

इस हदीस में स्पष्टीकरण है कि जो कोई मुर्दा सुन्नत को ज़िंदा करे जिसका शरअ में वजूद था उसके लिए सवाब है और उसके मुक़ाबले में बिदअत ज़लालत वह होगी जिसको ख़ुदा और रसूल सल्ल० पसन्द नहीं करते, जिसका शरअ में वजूद ही न हो वह हसना हो ही नहीं सकती, हां जिसका शरअ में वजूद हो और वह मुर्दा हो चुकी हो। उसको नए सिरे से ज़िंदा करे वह शाब्दिक रूप से हसना हो सकती है जैसे तरावीह की मिसाल दी गई है।

इसके बाद इस पुस्तिका के पृष्ठ पंद्रह पर लिखा है कि ख़त्म

ग्यारहवीं में कोई बुरी चीज़ नहीं।

जवाब

जब यह बिदअत हुई तो स्वयं ही बुरी हो गई। क्योंकि हदीस में है :

"كل بدعة ضلالة"

अर्थात हर बिदअत गुमराही है।

फिर इस पुस्तिका के पृष्ठ 16 पर अहयाउल उलूम लेखक इमाम ग़ज़ाली के हवाले से लिखा है कि :

"ان الافراد المباحات اذا اجتمعت كان ذلک المجموع مباحا."

अर्थात जब कई मुबाह चीज़ें इकट्ठी हो जाएं तो संग्रह भी मुबाह ही होगा।

जवाब

मौलवी मुहम्मद शरीफ़ बेचारे को मालूम नहीं कि मुबाह और चीज़ है और मुस्तहब और चीज़ है। मुस्तहब वह चीज़ है जिस पर सवाब मिले। और मुबाह वह चीज़ है जिस पर न सवाब है न अज़ाब। ग्यारहवीं मुस्तहब बल्कि ज़रूरी समझकर की जाती है इसलिए यह बिदअत है जो हराम है और अगर चावल, पुलाव, गोश्त, रोटी, क़ोरमा, फ़ीरीनी आदि इकट्ठे करके खा लिए जाएं तो जैसे अकेले अकेले जाइज़ और मुबाह हैं ऐसे ही मिलकर भी जाइज़ और मुबाह है। मौलवी मुहम्मद शरीफ़ को आता तो कुछ भी नहीं बेकार में एक बड़े मसले का सुबूत देने बैठ गए। हां संयोगवश कई मुस्तहिबात इकट्ठे हो जाएं जैसे एक समय में नफ़िल भी पढ़ ले। मिस्कीन को खाना खिला दे। बीमार का हाल भी पूछ ले आदि इसको कोई मना नहीं करता मगर जब उस संग्रह को मसला बना लिया जाए और इकट्ठा करने को मसनून की तरह बनाकर प्रोत्साहन दिया जाए

तो यह दीन में बिदअत है अतएव किताब दारमी पहले भाग पृ० 68 पर हदीस है।

اخبرنا الحکم ابن المبارک انا عمر بن یحییٰ قال سمعت ابی یحدث عن ابیه قال کنا نجلس علی باب عبد الله بن مسعود قبل صلوة الغداة فاذا خرج مشینا معه الی المسجد فجاء نا ابو موسیٰ الاشعری فقال اخرج الیکم ابو عبدالرحمن بعد قلنا لا فجلس معنا حتی خرج فلماخرج قمنا الیه جمیعا فقال له ابوموسیٰ یا ابا عبد الرحمن انی رأیت فی المسجد انفاً امراً انکرته ولم ار والحمد لله الا خیرا قال فما هوفقال ان عشت فتراه قال رأیت فی المسجد قوما حلقاً جلوساً ینتظرون الصلوة فی کل حلقة رجل وفی ایدیهم حصیً فیقول کبّروا مائة فیکبرون مائة فیقول هللوا مائة فیهللون مائة، یقول سحوا مائة فیسبحون مائة قال فماذا قلت لهم قال ما قلت لهم شیئا انتظار رأیک اوانتظار امرک قال افلا امرتهم ان یعدو سیاتهم وضمنت لهم ان لا یضیع من حسناتهم شئی ثم مضی ومضینا معه حتی اتی حلقة من تلک الحلق فوقف علیهم فقال ماهذا الذی ارکم تصنعون قالوا یا ابا عبدالرحمن حصیً نعد به التکبیر والتهلیل والتسبیح قال فعدوا سیاتکم فانا ضامن ان لا یضیع من حسناتکم شئی ویحکم یا امة محمد ماasرع هلکتکم هؤلاء صحابة نبیکم ﷺ متوافرون وهذه ثیابه لم تبل وآنیته

لم تکسر والذی نفسی بیده انکم علی ملة هی اهدی من ملة محمد او مفتتحوا باب ضلالة قالوا والله یا ابا عبد الرحمن ما اردنا الا الخیر قال وکم من مرید للخیر لن یصیبه. ان رسول الله ﷺ حدثنا ان قوما یقرؤن القرآن لا تجاوز ترا قیهم وایم الله ما ادری لعل اکثرهم منکم ثم تولیٰ عنهم فقال عمرو بن سلمه رأیت عامة اولئک یطاعنونا یوم النهروان مع الخوارج. (سنن دارمی، جلد اول ص٦٨)

अनुवाद : उमर बिन याहया कहते हैं कि मैंने अपने बाप से सुना वह अपने बाप से बयान करते थे कि हम सुबह की नमाज़ से पहले अब्दुल्लाह बिन मसऊद रज़ि० के दरवाज़े पर बैठते। जब वह अंदर से निकलते तो उनके साथ मस्जिद को जाते। हमारे पास अबू मूसा अशअरी रज़ि० आए कहा क्या अबू अब्दुर्रहमान (अब्दुल्लाह बिन मसऊद रज़ि० की उपाधि है) अभी तक नहीं निकले? हमने कहा नहीं। अबू मूसा भी हमारे साथ बैठ गए। जब अब्दुल्लाह बिन मसऊद रज़ि० निकले तो हम सब उनकी तरफ़ उनके साथ जाने के लिए आ खड़े हुए। अबू मूसा अशअरी रज़ि० ने कहा, ऐ अबू अब्दुर्रहमान मैंने मस्जिद में एक नई चीज़ देखी है मगर अलहम्दुलिल्लाह भलाई ही देखी है। अब्दुल्लाह बिन मसऊद रज़ि० ने फ़रमाया, वह क्या है। कहा, अगर आप ज़िंदा रहे तो स्वयं ही देख लेंगे। फिर अबू मूसा अशअरी रज़ि० ने कहा, मैंने मस्जिद में एक क़ौम हल्क़े बनाकर बैठी देखी है वे नमाज़ का इंतिज़ार करते हैं। हर हल्क़े के बीच एक व्यक्ति है उसके हाथों में कंकर हैं तो (बीच वाला) कहता है सौ बार अल्लाहु अकबर पढ़ो। तो वे सौ बार अल्लाहु अकबर पढ़ते हैं। फिर कहता है सौ बार ला इला-ह इल्लल्लाहु पढ़ो तो वे सौ बार ला इला-ह इल्लल्लाहु पढ़ते हैं। फिर कहता है कि सौ बार सुब्हानल्लाह पढ़ो तो वे सौ बार सुब्हानल्लाह पढ़ते हैं।

अब्दुल्लाह बिन मसऊद रज़ि० ने फ़रमाया तूने उनको क्या कहा? कहा, मैंने कुछ नहीं कहा। आपकी राए या हुक्म का इंतिज़ार है। फ़रमाया तूने उनको यह हुक्म क्यों न दिया कि अपनी बुराइयां गिनें (अर्थात यह ज़िक्र नेकियां नहीं बल्कि बुराइयां गिन रहे हैं) और मैं ज़िम्मेदार हूं कि उनकी कोई नेकी बर्बाद न होगी (मतलब यह है कि बन्दा तो ज़िम्मेदारी ले नहीं सकता तो नेकियां सब बर्बाद गईं) फिर अब्दुल्लाह बिन मसऊद रज़ि० चले और हम भी उनके साथ चले यहां तक कि उन हल्क़ों में से एक हल्क़े पर आए। उन पर खड़े हो गए। फ़रमाया यह क्या कर रहे हो? उन्होंने कहा, ऐ अबू अब्दुर्रहमान रज़ि० कंकरों के साथ तकबीर, तहलील, तस्बीह पढ़ते हैं। अब्दुल्लाह बिन मसऊद रज़ि० ने फ़रमाया, अपनी बुराइयां गिनो। तुम्हारी नेकियों का मैं ज़िम्मेदार हूं कि कोई बर्बाद नहीं होगी। ऐ उम्मते मुहम्मदिया सल्ल०! तुम्हें ख़राबी हो। तुम्हारा विनष्ट होना कितना निकट है, अभी सहाबा किराम अधिकता से मौजूद हैं। रसूलुल्लाह सल्ल0 के कपड़े पुराने नहीं हुए। आपके बर्तन नहीं टूटे (फिर व्यंग्य करते हुए फ़रमाया) खुदा की क़सम जिसके हाथ में मेरी जान है, बेशक तुम जिस दीन पर हो वह दीन मुहम्मदी से ज़्यादा हिदायत वाला है। क्या गुमराही का दरवाज़ा खोलने वाले हो? उन्होंने कहा, खुदा की क़सम ऐ अबू अब्दुर्रहमान! हमारा सिर्फ़ भलाई का इरादा है। फ़रमाया, कितने भलाई का इरादा करने वाले भलाई को कदापि नहीं पहुंचेंगे। रसूलुल्लाह सल्ल० ने हमें हदीस सुनाई है कि एक क़ौम क़ुरआन पढ़ेगी लेकिन वह उसकी हंसलियों से नीचे नहीं उतरेगा। खुदा की क़सम मैं नहीं जानता कि शायद उन लोगों के बहुत से तुममें से हों फिर वे उनसे फिर गए (अर्थात वापस हो गए) अम्र बिन सलमा रज़ि० फ़रमाते हैं कि बहुत से उन लोगों के हमने देखे कि ख़ारजियों के साथ शामिल होकर नहरवान के दिन (जबकि हज़रत अली रज़ि० के साथ ख़ारजियों की जंग हुई) हमारे साथ जंग करते थे।

इस हदीस पर सोच विचार करें कि उसमें कौन सी चीज़ बुरी है

उंगलियों पर ज़िक्र करना हदीस में यद्यपि बेहतर आया है मगर कंकर भी अपने में बुरी चीज़ नहीं। अबू हुरैरह रज़ि० कंकरियों पर ज़िक्र करते थे। जैसे मंकों की तस्बीह आदि लेकिन छुपाकर रखे क्योंकि उसमें दिखावे का दख़ल ज़्यादा है। अतएव मौलाना अब्दुल जब्बार ग़ज़नवी मरहूम ऐसा ही करते थे। और मौलाना सय्यद नज़ीर हुसैन उस्तादुल कुल देहलवी रह० भी तस्बीह इस्तेमाल करते थे। (देखिए अलहयात बाअदल ममात बाब वफ़ात, पृ० 414) और नमाज़ से पहले ज़िक्र करना भी कोई बुरी चीज़ नहीं। ज़िक्र हर समय सही है चाहे नमाज़ से पहले करे या बाद और ज़िक्र के लिए हल्क़े भी कोई बुरी चीज़ नहीं। रात दिन पठन पाठन होते हैं। शागिर्द उस्ताद हल्क़े बनाकर बैठते हैं। और तकबीर, तहलील और तस्बीह तीनों का ज़िक्र करना आगे पीछे भी कोई बुरी चीज़ नहीं बल्कि हदीसों में इसके साथ अलहम्दुलिल्लाह भी आया है। हां सौ सौ बार की गिनती नहीं आई। सौ की संख्या अपनी तरफ़ से निर्धारित करना और उन सारी चीज़ों के संग्रह को एक मसला बना लेना और बिला ज़रूरत हल्क़ा बनाकर एक आदमी का बीच में बैठना। क्योंकि पठन पाठन के समय तो ज़रूरत होती है कि सारे शागिर्द एक अंदाज़ पर उस्ताद के निकट हों। अपने तौर पर ज़िक्र करने के लिए न हल्क़े की ज़रूरत है न एक का बीच में बैठकर कहने की ज़रूरत है। तो इस प्रकार की बातों को जमा करके एक ख़ास आकृति के साथ ज़िक्र चूंकि शरीअत में साबित नहीं था। इस बिना पर अब्दुल्लाह बिन मसऊद रज़ि० ने उन पर गुमराही का फ़तवा लगाया। इसी तरह अब भी जो व्यक्ति अपनी तरफ़ से इस प्रकार की बातें दीन में दाख़िल करेगा और लोगों को उसके करने की शिक्षा देगा तो वह बिदअत और हराम काम करने वाला होगा। चाहे वज़ाइफ़ इस प्रकार के करे या उर्स ग्यारहवीं या चहलम साता आदि करे ये सब बिदआत और गुमराही हैं। दारमी के इसी भाग के पृ० 69 पर अब्दुल्लाह बिन मसऊद रज़ि० से रिवायत किया है कि :

"اتبعوا ولا تبتدعوا فقد كفيتم"

अनुवाद : पहलों का अनुसरण करो नई बात बिल्कुल न निकालो। क्योंकि तुम्हारी किफ़ालत हो चुकी है। अर्थात तुम्हें नई बातें निकालने की ज़रूरत नहीं।

क्या शरीअत ने किसी प्रकार की कमी छोड़ी है जो तुम नई नई बातें ईजाद करते हो? तो तुम उस पर भरोसा करो जो पहले लोगों ने किया।

मतलब यह कि दीन में किसी प्रकार का दख़ल नहीं। यह ख़ुदा और रसूल की चीज़ है जो इसमें दख़ल देगा वह बिदअती है जिस पर लानत आई है। न उसका नफ़िल क़ुबूल है न फ़र्ज़ बल्कि रसूलुल्लाह सल्ल० भी अपनी तरफ़ से कुछ नहीं कर सकते। क़ुरआन में है : "इनिल हुकमु इल्ला लिल्लाहि" (सूरह यूसुफ़ : रुकूअ 5) अर्थात हुक्म सिर्फ़ अल्लाह ही के लिए है। रसूलुल्लाह सल्ल० ने अपने ऊपर शहद हराम किया सूरह तहरीम में अल्लाह तआला ने आपको डांटा :

﴿يَا اَيُّهَا النَّبِىُّ لِمَ تُحَرِّمُ مَا اَحَلَّ اللّٰهُ لَکَ (الآية)﴾

"ऐ नबी तू क्यों हराम करता है उस चीज़ को जो अल्लाह तआला ने तेरे लिए हलाल की, क्या तू पत्नियों की ख़ुशी चाहता है।"

कैसी ज़बरदस्त डांट है। ख़ुदा जाने ये लोग कितने साहसी हैं कि ख़ुदा के दीन में हस्तक्षेप करते हैं। और अल्लाह से तनिक नहीं डरते कि जब रसूलुल्लाह सल्ल० को अल्लाह तआला ने डांट दिया तो हमारा क्या हाल होगा। ख़ुदा तआला महफ़ूज़ रखे। आमीन सुम्मा आमीन

इसके बाद इस पुस्तिका में पृष्ठ 16 पर लिखा है :

कुछ कह देते हैं जी हम ग्यारहवीं सावधानी हेतु मना कर देते हैं यह (ऐसी सावधानी) अल्लाह पर आरोप है। उनको शामी की इस इबारत पर सोच विचार करना चाहिए :

"ليس الاحتياط فى الافتراء على الله تعالىٰ باثبات الحرمة والكراهة اللذين لا بد لهما من دليل بل فى قول بالاجابة التى هى اصل فى الاشياء وقد توقف النبى ﷺ مع انه هو المشرع فى تحريم ام الخبائث حتى انزل عليه النص القطعى."

अनुवाद : सावधानी इसमें नहीं कि किसी काम को जिस पर शरअी दलील न हो हराम या मक्रूह कह दिया जाए यह तो अल्लाह तआला पर आरोप है बल्कि सावधानी इसी में है कि मुबाह कहा जाए कि जो चीज़ों में असल है स्वयं हुज़ूर सल्ल० ने बावजूद यह कि आप शारेअ हैं। शराब ऐसी चीज़ को जो उम्मुल ख़बाइस अर्थात तमाम ख़बासतों की मां है हराम फ़रमाने में संकोच फ़रमाया यहां तक कि ख़ुदा का हुक्म आया।

जवाब

मौलवी मुहम्मद शरीफ़ ने जिन लोगों का यह कथन नक़ल किया है। वे अपरिचित लोग हैं। ग्यारहवीं पूरी तरह हराम है। सावधानी हेतु मना करने का क्या मतलब है।

ईसाले सवाब

फिर इस पुस्तिका के पृष्ठ सतरह पर ईसाले सवाब का ज़िक्र किया है।

जवाब

ईसाले सवाब का मसला आम सहमति का है। हां बिदअत के तरीक़े पर ईसाले सवाब नहीं होता बल्कि मसनून तरीक़े पर होता है। जैसे आम तौर पर दुनिया सदक़ा ख़ैरात करती है।

फिर इसी पृष्ठ पर हज़रत इबराहीम अलैहि० रसूल सल्ल० के बेटे की वफ़ात के तीसरे दिन तीसरा करने की रिवायत लिखी है और हवाला मुल्ला अली क़ारी के फ़तवा का दिया है।

जवाब

यह बिल्कुल झूठ और बोहतान है। अगर हिम्मत है तो उसका सुबूत दो। झूठी बातें बनाकर लोगों को धोखा देना यह बिदअतियों का काम है। खुदा इससे बचाए।

इसके बाद इस पुस्तिका के पृष्ठ 19 पर मिश्कात शरीफ़ बाबुल फ़ितन के हवाले से हज़रत अबू हुरैरह रज़ि० की रिवायत लिखी है कि कौन है जो मस्जिदे इशा में चार रकअत नमाज़ पढ़े और कहे "इसका सवाब अबू हुरैरह रज़ि० के लिए है।"

इसी तरह मिश्कात बाबुस्सदक़ा के हवाले से हज़रत साअद रज़ि० की रिवायत लिखी है कि एक कुआं खुदवाया और उसका सवाब साअद रज़ि० की मां के लिए कर दिया।

जवाब

इसका कोई भी इन्कारी नहीं कि कोई भला काम करके उसका सवाब किसी को पहुंचा दिया जाए। हां शारीरिक इबादत में झगड़ा है। इमाम शाफ़ई रह० कहते हैं कि शारीरिक का सवाब नहीं पहुंचता आर्थिक का पहुंचता है। इमाम अबू हनीफ़ा रह० और इमाम अहमद रह० फ़रमाते हैं कि शारीरिक व आर्थिक दोनों का पहुंचता है। इमाम मालिक रह० से दो रिवायतें हैं। एक में है कि पहुंचता है और एक मैं है कि नहीं। बहर हाल मसनून तरीक़ा होना चाहिए जिसका शरीअत में सुबूत हो, न कि बिदअती तरीक़ा और अपना ईजाद किया हुआ।

इसके बाद इस पुस्तिका में शाह वलीयुल्लाह रह० की किताब "अल इंतिबाह फ़ी सलासिल औलिया" के हवाले से ख़त्म आदि का ज़िक्र किया है। यद्यपि हम पृष्ठ 9-10 में बतला चुके हैं कि शाह वलीयुल्लाह रह० के ख़ानदान में शुरू में कुछ बुरी रस्में मौजूद थीं जो धीरे धीरे मिट गईं।

इसके बाद इस पुस्तिका के पृष्ठ 20 पर ज़बदतुन्नसाइह पृ० 132 के हवाले से फ़ातिहा ख़्वानी का ज़िक्र किया है। और हाजी इमदादुल्लाह मुहाजिर मक्की के हवाले से ग्यारहवीं और इस प्रकार की और बिदअतों का ज़िक्र किया है।

जवाब

न कोई क़ुरआन व हदीस से सुबूत पेश किया है और न इज्माअ और क़यास से।

दिनों का निर्धारण

फिर इस पुस्तिका के पृष्ठ 21 पर दिनों के निर्धारण के सुबूत के लिए क़ुरआन मजीद की यह आयत पेश की है "व ज़क्किरहुम बिअय्यामिल्लाह" (सूरह इबराहम : रुकूअ 1)

अर्थात अल्लाह के दिनों के साथ उनको उपदेश करो कि फ़लां दिन अल्लाह तआला ने तुम पर यह इनाम किया।

जवाब

इस आयत का ग्यारहवीं, बीसवीं, चहलम, शशमाही से दूर का संबंध भी नहीं वह तो इसी प्रकार का उपदेश है जैसे अल्लाह तआला क़ुरआन मजीद में हमें उपदेश करते हैं।

﴿ وَلَقَدْ خَلَقْنَاكُمْ ثُمَّ صَوَّرْنَاكُمْ ثُمَّ قُلْنَا لِلْمَلَائِكَةِ اسْجُدُوا لِآدَمَ ﴾

"हमने तुम्हें पैदा किया फिर तुम्हारी सूरतें बनाईं। फिर हमने फ़रिश्तों को कहा कि आदम को सज्दा करो।"

इस प्रकार के उपदेश क़ुरआन मजीद में अधिकता से मौजूद हैं। दिन निश्चित करने का कोई नाम व निशान नहीं न ग्यारहवीं न बारहवीं न तेरहवीं। क्या इस प्रकार की आयतों को उतारने के लिए अल्लाह ने ग्यारहवीं निश्चित की थी? नहीं बल्कि ज़रूरत पड़ने पर उतरती थीं। जिसको उतरने का उद्देश्य कहते हैं। फिर सारी दुनिया क़ुरआन मजीद पढ़ती है और उपदेश करती है। इसमें किसी का मतभेद नहीं। हां बरेलवियों ने जो नया तरीक़ा ग्यारहवीं आदि का ईजाद कर रखा है यह बिदअत और हराम है।

फिर इस पुस्तिका के पृष्ठ 22 पर कंज़ुल उम्माल चौथे भाग पृष्ठ

227 के हवाले से आशूरा के दिन (दसवीं मुहर्रम) का ज़िक्र किया है।

"ان عاشوراء يوم من ايام الله"

अर्थात आशूरा का दिन अल्लाह के दिनों में से है।

क्योंकि इस दिन अल्लाह तआला ने (मूसा अलैहि० के लिए) दरिया को फाड़ा। और इसी दिन आदम अलैहि० की तौबा क़ुबूल हुई। और इसी दिन नूह अलैहि० की कश्ती जूदी पहाड़ पर ठहरी।

जवाब

हदीस शरीफ़ में इस दिन का रोज़ा मसनून है। इससे एक साल के गुनाह माफ़ होते हैं लेकिन यह दिन हमने स्वयं निश्चित नहीं किया बल्कि रसूलुल्लाह सल्ल० ने निश्चित किया है तो इस पर क्या आपत्ति? इसी तरह जो दिन क़ुरआन और हदीस में निश्चित हैं उन पर किसी को आपत्ति नहीं। उन पर अमल होना चाहिए।

फिर इस पुस्तिका के इसी पृष्ठ पर लिखा है ये सारे दिन अंबिया के इनामों के हैं। यहां तक कि अल्लाह ने हज़रत ईसा अलैहिस्सलाम और हज़रत याहया अलैहि० के जन्म दिन और मौत के दिन की भी विशेषता फ़रमाई है।

जवाब

यह सफ़ेद झूठ है किसी आयत व हदीस में नहीं आया कि इन दिनों को मनाओ। उनमें उपदेश दो या खाना खिलाओ बल्कि क़ुरआन व हदीस में यह भी ज़िक्र नहीं कि ये कौन से दिन हैं।

इसके बाद इस पुस्तिका में लिखा है। अगर इंसाफ़ से देखा जाए तो कोई ऐसा अमल नहीं जो निर्धारण के सिवा होता हो। हम ग्यारहवीं शरीफ़

के विरोधियों से पूछते हैं कि जब अहादीस नबविया से दिन निश्चित करके नमाज़ इस्तिसक़ा पढ़ना और सफ़र के दिन निश्चित करना और दिन निश्चित करके मुसलमानों की दावत करना और मसाकीन व ग़रीबों को खाना खिलाना, ख़ास दिनों में सूरतों का पढ़ना और रोज़े रखना तमाम बातें पूरी तरह साबित हैं फिर दिन निश्चित करके ग्यारहवीं शरीफ़ की फ़ी सबीलिल्लाहि नियाज़ को किस दलील से नाजाइज़ कहते हो। इसके अलावा तमाम फ़राइज़ इस्लामिया नमाज़, रोज़ा, हज, ज़कात आदि निश्चित दिन और समय पर ही अदा किए जाते हैं।

जवाब

जो दिन या समय आदि ख़ुदा और रसूल सल्ल० ने निश्चित किए हैं वे तो दीन में दाख़िल हैं और उन पर अमल करना ठीक ठीक इबादत है। जैसे अभी आशूरा का बयान हुआ है। इनके अलावा हमारा अपनी तरफ़ से दिन या समय निश्चित करना दो तरह का होता है। एक यह कि व्यक्तिगत तौर पर अपनी ज़रूरत के तहत कोई दिन निश्चित कर लिया जाए जैसे किसी को इतवार के दिन फ़ुरसत होती है तो वह इतवार इतवार दर्स दे या किसी जगह जलसा या तक़रीर की ज़रूरत होती है तो यथा अवसर तारीख़ तै कर दी जाती है ताकि लोग आ सकें। इसी तरह जब बारिश की नमाज़ व दुआं के लिए बाहर निकलते हैं तो एक दिन का ऐलान कर देते हैं। चाहे कोई दिन हो ताकि लोग जमा हो सकें। और हमेशा के लिए एक दिन टिका हुआ नहीं होता ऐसे ही जब किसी को दावत की गुंजाइश होती है तो जिन लोगों की दावत करता है उनको समय बतला देता है। इस प्रकार का निर्धारण दीन में दाख़िल नहीं। क्योंकि यह ज़रूरत पड़ने पर होता है। इसलिए सबके लिए एक दिन नहीं होता बल्कि कोई इतवार निश्चित करता है तो कोई सोमवार तै कर लेता है। अर्थात कोई जुमेरात तै करता है तो कोई जुमा। अतएव हज़रत अबू हुरैरह रज़ि०

जुमा का दिन आने से पहले मिम्बर के पास खड़े होकर हदीसें सुनाते क्योंकि उस समय लोगों का इज्तिमाअ[1] होता जो जुमा पढ़ने के लिए आते।

---

1. देवबन्दी आदि जुमा को पहली अज़ान के बाद अपनी ज़बान में उपदेश देते हैं। फिर दूसरी अज़ान के बाद अरबी ज़बान में ख़ुत्बा पढ़ते हैं कुछ मुद्दत से उन्होंने यह बिदअत जारी कर रखी है पहले अरबी ख़ुत्बा की जगह अपनी ज़बान में उपदेश देते थे और पहली अज़ान के बाद कोई उपदेश नहीं था। और इस बिदअत पर विवेचन हज़रत अबू हुरैरह रज़ि० के इस अमल से करते हैं यद्यपि अबू हुरैरह रज़ि० के इस अमल से इसका कोई संबंध नहीं क्योंकि अबू हुरैरह रज़ि० का यह अमल संयोग से अस्थाई चीज़ है। असल बात यह है कि अबू हुरैरह रज़ि० के पास हदीसों का भंडार सब सहाबा किराम रज़ि० से ज़्यादा था सिवाए अब्दुल्लाह बिन अम्र रज़ि० के। क्योंकि वह लिखना जानते थे और अबू हुरैरह रज़ि० का आधार सिर्फ़ स्म्रण शक्ति पर था। अबू हुरैरह रज़ि० इस इज्तिमाअ को ग़नीमत समझ कर इमाम के आने से पहले मिम्बर के पास अपनी हदीसें सुनाते ताकि ज़ब्त हो जाएं (जैसे तरावीह में क़ुरआन मजीद सुनाने से पुख़्ता हो जाता है) और इसी के साथ लोगों को मसाइल का ज्ञान भी हो जाए इसलिए यह नहीं कहा कि उपदेश देते बल्कि हदीसें सुनाने का ज़िक्र किया है इस उपदेश के विपरीत जो पहली अज़ान के बाद होता है। यह मात्र उपदेश है और मक़सद इससे यह है कि लोग दूसरी मस्जिदों में न चले जाएं क्योंकि ख़ुत्बा उनके यहां ग़ैर अरबी में सही नहीं और लोग अरबी ज़बान समझते नहीं इसलिए पहले अपनी ज़बान में उपदेश देते हैं फिर अरबी ख़ुत्बा पढ़ते हैं और इसका इतना महत्व हो गया है कि सारे देश में यह तरीक़ा प्रचलित है जैसे एक मुस्तक़िल मसला शरअी होता है हज़रत अबू हुरैरह रज़ि० के अमल के विपरीत। वह इत्तिफ़ाक़िया चीज़ थी न वह मुस्तक़िल उपदेश था और न ही उसका आम रिवाज था बल्कि इत्तिफ़ाक़िया अपनी ज़रूरत के तहत अबू हुरैरह रज़ि० ने यह काम किया। इसलिए न अबू हुरैरह रज़ि० इस पर क़ायम रहे और न सहाबा किराम में यह सिलसिला जारी हुआ। मसला मामूली से हेर फेर से कुछ का कुछ बन जाता है जैसे खाना इसलिए खाए कि जीवन

शेष अगले पृष्ठ पर

और मिश्कात किताबुल इल्म पहली फ़स्ल पृष्ठ 23 में है कि अब्दुल्लाह बिन मसऊद रज़ि० जुमेरात को उपदेश देते। एक व्यक्ति ने

खाने पीने के लिए है तो यह बड़ा अपराध है और अगर इसलिए खाए कि जीवन क़ायम रहे और जीवन खुदा की इबादत के लिए है तो यह खुदा की ठीक इबादत है।

ऐसा ही अमल अबू हुरैरह रज़ि० और प्रचलित उपदेश को समझ लें। शामी पहला भाग पृष्ठ 507-524 में सलात रगाइब को जो मेराज के महीना (रजब) में लोग पढ़ते हैं बिदअत लिखा है और उससे मना किया है। वजह इसकी यह लिखी है कि लोगों ने इसको बड़ा महत्व दिया है और आम रिवाज पड़ गया है यहां तक कि जमाअत के साथ पढ़ते हैं जैसे कोई वाजिब काम होता है और हंफ़िया की किताबों में लिखा है कि वस्तु की क़िस्म बदलने से हुक्म बदल जाता है। ऐसे ही अबू हुरैरह रज़ि० के अमल की वह क़िस्म नहीं जो प्रचलित उपदेश की है तो फिर इससे विवेचन क्योंकर सही होगा।

इसके अलावा अबू हुरैरह रज़ि० का अमल ग़ैर इमाम का अमल है जो वह समय ख़ाली देखकर बिना मिम्बर के करता है प्रचलित उपदेश के विपरीत। यहां दो उपदेश सामान्यतया एक इमाम के मिम्बर पर होते हैं एक अरबी में और एक अपनी ज़बान में। तो उसकी पाबन्दी और इसका आयोजन बिदअत है और सल्फ़ के तरीक़े के बिल्कुल ख़िलाफ़ है क्योंकि उन्होंने दूसरे देश फ़तह होने के बावजूद ऐसा नहीं किया। हंफ़िया ख़ुत्बा ग़ैर अरबी में सही न होने की बड़ी दलील यही पेश करते हैं कि दूसरे देश के फ़तह होने के बावजूद और ज़रूरत के बावजूद ग़ैर अरबी में नहीं हुआ। इसलिए ग़ैर अरबी में सही नहीं तो हम पूछते हैं कि उन्होंने ज़रूरत के बावजूद ग़ैर अरबी में इस तरह से दो उपदेशों का सिलसिला जारी किया? एक अरबी में दूसरी अज़ान के बाद और एक ग़ैर अरबी में पहली अज़ान के बाद। तनिक सोचना चाहिए और अपने पांव पर आप कुल्हाड़ी नहीं मारनी चाहिए। फिर यहां एक और बात विचार्णीय है वह यह कि हंफ़िया किताबों (हिदाया आदि) में लिखा है कि आयते करीमा "इज़ा नूदि-य- लिस्सलाति मिय़ं यौमिल जु-मुअति फ़सअव इला ज़िकरिल्लाहि"

शेष अगले पृष्ठ पर

कहा कि मैं दोस्त रखता हूं कि आप हर दिन हमें उपदेश दिया करें। फ़रमाया मैं अच्छा नहीं समझता कि तुम्हारा जी उक्ताऊं (क्योंकि जल्दी जल्दी उपदेश से इंसान का जी उक्ता जाता है मैं तुम्हारी इस तरह निगरानी करता हूं जिस तरह रसूलुल्लाह सल्ल० जी उक्ताने के डर से हमारी निगरानी करते थे)

मतलब यह कि हालात के तहत जैसा मौक़ा होता है वैसे कर लिया जाता है हमेशा के लिए कोई टिका हुआ दिन नहीं होता न हमेशा कोई एक महीना निश्चित होता है न हमेशा महीने की कोई तारीख़ निश्चित होती है।

दूसरी क़िस्म यह है कि कोई दिन तै कर लिया जाए। जैसे हर माह की ग्यारहवीं या मय्यित का दसवां, बीसवां, चहलम आदि और सारी दुनिया को उसकी तर्ग़ीब दी जाए कि यह दिन मनाओ और इसमें फ़लां फ़लां काम करो। जैसे एक शरअी मसला होता है और उसको भला काम

का संबंध पहली अज़ान से है अर्थात अल्लाह तआला का फ़रमान "जब जुमा के दिन अज़ान हो जाए तो अल्लाह के ज़िक्र की तरफ़ दौड़ो। इससे पहली अज़ान तात्पर्य है। तो पहली अज़ान होते ही अपना कारोबार छोड़कर अल्लाह के ज़िक्र के लिए फ़ौरन जाना चाहिए। और यह बात स्पष्ट है कि रसूलुल्लाह सल्ल० के ज़माने से लेकर हज़रत उसमान रज़ि० की ख़िलाफ़त तक इस आयत का संबंध ख़ुत्बा वाली अज़ान से था जो अब दूसरी अज़ान कहलाती है क्योंकि पहले एक ही अज़ान थी। फिर हज़रत उसमान रज़ि० ने एक और बढ़ा दी जिसको अब पहली कहते हैं तो जैसे यह आयत पहली अज़ान के साथ लग गई ऐसे ही इस आयत में जिसमें ज़िक्र की तरफ़ दौड़ने का हुक्म है वह पहला उपदेश बन गया अबू हुरैरह रज़ि० के अमल के विपरीत वह इस आयत के तहत आता ही नहीं तो फिर इस पर इस उपदेश को किस तरह क़यास कर सकते हैं अल्लाह तआला उन लोगों को समझ दे बात सोच कर नहीं करते :

जो कहना है सो कहिए लेकिन समझ कर मर्द नोमानी
समझ है ख़ास आदम पर बड़ा इनाम रहमानी

समझा जाता है। और इस पर सवाब की उम्मीद रखी जाती है। यह क़िस्म बिदअत और हराम है। रसूलुल्लाह सल्ल० फ़रमाते हैं :

"من احدث في امرنا هذا ما ليس منه فهو رد"

अर्थात जो हमारे दीन में नया काम पैदा करे जो उसमें नहीं वह मर्दूद है। (मिश्कात बाबुल ऐतिसाम पहली फ़स्ल पृ० 27)

हां कोई अपने पीर साहब या अपने किसी बुज़ुर्ग की तरफ़ से क़ुरबानी करे या हज आदि करे या बिना निश्चित दिन के या तारीख़ के किसी मिस्कीन को खाना खिला दे या किसी छात्र को किताब ले दे या कपड़ा बना दे या किसी ग़रीब का क़र्ज़ उतार दे या किसी विधवा औरत या यतीम बच्चे के साथ सद व्यवहार कर दे या सदक़ा जारिया कर दे, मस्जिद या सराए बना दे या जन कल्याण के लिए कुआं खुदवा दे और नीयत कर ले कि उसका सवाब फ़लां बुज़ुर्ग या फ़लां मय्यित को पहुंचे तो उसमें किसी का मतभेद नहीं। यह शरीअत में साबित है। इसके विपरीत कि अपनी तरफ़ से दिन निश्चित करना या खाना तै करना कि खीर ही हो या हलवा ही हो या फ़लां चीज़ हो। इस प्रकार के निर्धारण बिदअत हैं बल्कि जिस प्रकार की किसी को ज़रूरत हो इसका ध्यान रखे। भूखे को खाना दे। नंगे को कपड़ा पहनाए। क़र्ज़ वाले का क़र्ज़ा उतार दे आदि। अपनी तरफ़ से एक बंधन यह दीन में हस्तक्षेप है और बिदअत है, जो हराम है।

कुछ लोग ईद की सिवय्यों पर भी आपत्ति करते हैं। मगर आपत्ति करने वाले ईद की हक़ीक़त को नहीं समझते। ईद का दिन अल्लाह तआला की तरफ़ से दावत का दिन निश्चित है। इसी लिए इस दिन रोज़ा रखना मना है। ग्यारहवीं बारहवीं आदि अल्लाह की तरफ़ से कोई दावत का दिन नहीं। और जब ईद का दिन अल्लाह तआला की तरफ़ से दावत का हुआ तो उस दिन घर वाले जो अपनी स्वेच्छा से पकाएंगे चाहे सिवय्यां हों या चावल या फ़ीरीनी या हलवा गोश्त पुलाव आदि हों यह सब अल्लाह

की तरफ़ से घर वालों की दावत होगी। और जब अल्लाह की तरफ़ से दावत हुई तो यह बन्दे की तरफ़ से सदक़ा ख़ैरात की क़िस्म से न हुआ जो सवाब के लिए करता है तो ईद पर अपने निश्चित दिनों को क़यास करना ईद की हक़ीक़त से अनभिज्ञता है। अल्लाह तआला समझ दे और गुमराही से बचाए। आमीन।

चेतावनी

मौलवी मुहम्मद शरीफ़ कभी कभी अपना खंडन आप ही कर जाते हैं मगर उनको पता नहीं लगता, उपरोक्त उल्लिखित इबारत में ख़ास दिनों में सूरतों का पढ़ना बयान किया है यद्यपि फ़िक़्ह की किताबों में लिखा है कि सूरतों को प्रमुख नहीं समझना चाहिए जैसे जुमा की सुबह की नमाज़ में सूरह सज्दा और सूरह दह्र ही पढ़ना और जुमा की नमाज़ में सूरह आला और सूरह ग़ाशिया या सूरह जुमा और सूरह मुनाफ़िक़ून को ख़ास करना, यह मना[1] है। मौलवी मुहम्मद शरीफ़ बताएं कि इसमें कोई बुराई नहीं तो आपके निकट यह बिदअत हसना हुई फिर फ़ुक़हा ने इसको मना क्यों किया? इसके अलावा और सुनिए। इमाम हमवी अशबाह वन्नज़ाइर की व्याख्या में लिखते हैं :

" النبى ﷺ قال لا تخصوا ليلة الجمعة بقيام من بين الليالى . رواه مسلم فاذا نهى من هذه الليلة فغيرها بالمنع اولى لان التخصيص بدعة۔(ا ص ۳۸۵)

अनुवाद : नबी करीम सल्ल० ने जुमा की रात को इबादत के लिए ख़ास करने से मना फ़रमाया है। जब जुमा की रात को प्रमुख समझना

1. हदीसों में सूरतों की प्रमुखता आई है शायद फ़ुक़हा को वे हदीसें नहीं पहुंचीं या कोई और वजह होगी खुदा सुन्नत पर चलाए और उसी पर ख़ात्मा करे। आमीन

शरअन सही नहीं तो किसी और दिन की प्रमुखता कैसे सही होगी क्योंकि प्रमुख समझना बिदअत है।

इससे मालूम हुआ कि दीन में कोई बिदअत हसना नहीं है बल्कि हर बिदअत गुमराही है। तो इसी तरह ग्यारहवीं बारहवीं को समझ लें। उम्मीद है कि अब मौलवी मुहम्मद शरीफ़ साहब ग्यारहवीं का नाम नहीं लेंगे। अल्लाह सौभाग्य प्रदान करे और हिदायत दे। आमीन

फिर इस पुस्तिका के पृष्ठ 23 पर बुख़ारी शरीफ़ के हवाले से हज़रत सहल रज़ि० की एक रिवायत बयान की है। सहल कहते हैं कि :

"एक औरत हर जुमा को चुक़न्दर और जौ के आटे से हमारी दावत किया करती थी।"

जवाब

यह दावत इस प्रकार की है जैसे दावत करने वाले दावत के लिए एक दिन निश्चित कर देते हैं क्योंकि जुमा के दिन जुमा पढ़ने के लिए लोग आते थे जिनमें ग़रीब ग़ुरबा भी होते। वह औरत उनकी दावत कर देती ताकि भूखे न जाएं। न कि यह दिन शरअ में तै है अगर शरअ में तै होता तो और भी उसी पर अमल करते। इसलिए यह उसी औरत पर ख़त्म हो गया। मालूम हुआ कि यह कोई शरअी चीज़ नहीं।

इसके बाद इसी पुस्तिका में हाजी इमदादुल्लाह मुहाजिर मक्की रह० के हवाले से लिखा है कि ग्यारहवीं आदि का दिन निश्चित करने में तनिक ख़्याल रहता है कि फ़लां समय यह काम करना है वैसे ख़्याल नहीं आता।

जवाब

इसका जवाब यह है कि इसी का नाम तो बिदअत है। मुसलमान का काम है कि जब तौफ़ीक़ हो अल्लाह के रास्ते में दे न कि किसी दिन का

इंतिज़ार करे जिसका ख़ुदा व रसूल सल्ल० ने हुक्म नहीं दिया।

फिर इसी पुस्तिका के पृष्ठ चौबीस पर शाह अब्दुल अज़ीज़ साहब देहलवी रह० के फ़तावा अज़ीज़िया के हवाले से लिखा है कि उर्स का दिन इसलिए निश्चित किया जाता है कि वह उनके लिए यादगार होगा।

जवाब

ऐसी यादगारें क़ायम करना जो शरअ में बिदअत हों जाइज़ नहीं उन बुज़ुर्गों की किताबें और उनके कारनामे उनकी यादगारें हैं। वे पढ़ें और उन पर अमल करें। आद क़ौम ऐसी यादगारें मनाती थी तो हूद अलैहिस्सलाम ने उनको डांटा और फ़रमाया :

﴿اتبنون بكل ريع آية تعبثون﴾

"क्या तुम हर टीले पर निशान निर्माण करते हो (यह) बेकार काम करते हो।"

बाक़ी रहा शाह अब्दुल अज़ीज़ का हवाला तो इससे पहले हम पृ० 12 में लिख चुके हैं कि शाह वलीयुल्लाह और शाह अब्दुल अज़ीज़ के ख़ानदान में शुरू में कई बिदअतें थीं जो आख़िर में मिट गईं। तो बार बार उनके हवाले देना बेकार है।

फिर इसी पुस्तिका में पृष्ठ 24 पर एक हदीस लिखी है कि :

"احب الاعمال الى الله ادومها" (الحديث)

अर्थात अल्लाह को वह अमल पसन्द है जो हमेशा हो।

जवाब

इस हदीस से मौलवी मुहम्मद शरीफ़ ने अपना ही खंडन कर दिया क्योंकि जो अमल हमेशा होगा उसके लिए दिन तै करने की ज़रूरत नहीं

हां शरअ ने दिन तै किया हो तो निर्धारित समय पर होना चाहिए।

इसके बाद इस पुस्तिका में शैख़ अब्दुल हक़ मुहद्दिस देहलवी की किताब मा सब्त बिस्सुन्नह पृष्ठ 96 के हवाले से कुछ बाद वालों का कथन बयान किया है कि जिस दिन बुज़ुर्ग वफ़ात पाते हैं उस दिन ज़्यादा भलाई व बरकत की उम्मीद होती है।

जवाब

बाद वालों का यह कथन बिल्कुल मनगढ़त है। शरीअत में इसका कोई सुबूत नहीं है।

इसके बाद पृष्ठ 25 में रिवायतों के संग्रह के लेखक के हवाले से लिखा है कि किसी बुज़ुर्ग की मौत के दिन आत्माएं आती हैं। तो उस दिन की दावत का ख़ास ख़्याल रखना चाहिए।

जवाब

यह मात्र अपनी अटकल है, आत्माओं के आने का शरीअत में कोई सुबूत नहीं, न उस दिन की दावत का सुबूत है। और रिवायतों का संग्रह अपनी मनगढ़त रिवायतों का संग्रह है।

इसके बाद इस पुस्तिका के पृष्ठ 26 में फिर शाह अब्दुल अज़ीज़ का कथन बयान किया है कि वह अपने बाप का हर साल उर्स करते थे।

(बहवाला ज़बदतुन्नसाइह फ़ी मसाइल ज़बाइह पृ० 42)

जवाब

इसका कई बार जवाब हो चुका है। उनके ख़ानदान में शुरू में ऐसी ग़लतियां थीं जो बाद में ख़त्म हो गईं।

फिर इसी पुस्तिका के पृष्ठ 27 में उम्मत के इज्माअ का बयान किया है और बहवाला ज़बदतुन्नसाइह फ़ी मसाइल ज़बाइह पृष्ठ 42 लिखा है कि शाह अब्दुल अज़ीज़ साहब फ़रमाते हैं कि फ़ातिहा आदि पर उलमा का इज्माअ है।

जवाब

सारी दुनिया जानती है कि इज्माअ तो क्या शरीअत में इसका नाम व निशान तक नहीं अतएव विवरण ऊपर गुज़र चुका है।

फिर इस पुस्तिका के पृष्ठ 27 में लिखा है कि कुछ लोग ग्यारहवीं को ग़ैरुल्लाह की नज़र व नियाज़ कहते हैं और ग़ैरुल्लाह की नज़र व नियाज़ हराम है। अतएव क़ुरआन मजीद में है कि :

"वमा उहिल्ल बिही लि-ग़ैरिल्लाहि" मौलवी मुहम्मद शरीफ़ इसका जवाब देते हैं कि इस आयत में ज़बह के समय ग़ैरुल्लाह का नाम तात्पर्य है और ग्यारहवीं को जो शाह अब्दुल क़ादिर जीलानी रह० की तरफ़ निस्बत करते हैं तो यह ऐसा है जैसे कहते हैं तेरी भैंस, अकबर की बकरी, मौलवी साहब की पत्नी, मेरे कपड़े तो क्या सब हराम हो गए।

जवाब

अगर ऐसा होता तो जैसे भैंस बकरी मालिक के काम आती है और पत्नी से मौलवी साहब लाभ उठाते हैं। ऐसे ही ग्यारहवीं पीर साहब खाते जबकि ग्यारहवीं मौलवी मुहम्मद शरीफ़ आदि खा जाते हैं तो फिर यहां भैंस बकरी पत्नी आदि की मिसाल कैसे सही होगी?

इसके अलावा मौलवी मुहम्मद शरीफ़ ने दो तरह से धोखा दिया है, एक यह कि आयत को ज़बह के साथ ख़ास किया जबकि बुज़ुर्गों ने इसके मायना आम भी किए हैं (और सही आम ही हैं क्योंकि क़ुरआन मजीद

में ज़बह की कोई क़ैद नहीं) देखें तफ़्सीर कबीर आदि। अतएव हमने इस बारे में एक मुस्तक़िल किताब लिखी है जिसका नाम "वमा उहिल्ल बिही लि-ग़ैरिल्लाहि" है।

दूसरा धोखा यह दिया है कि इसको तेरी भैंस, तेरी बकरी पर क़यास किया है जबकि ग्यारहवीं की हुरमत की वजह और है। वह यह कि तै किया जाना, खाने के बावजूद सवाब की नीयत से किया जाता है और दिन भी अपनी तरफ़ से निर्धारण किया है जिसका शरअ में कोई सुबूत नहीं। अकबर की बकरी, तेरी भैंस के लिए न तो कोई दिन तै है और न यह सवाब की नीयत से किया जाता है बल्कि ग्यारहवीं की हुरमत की एक और बड़ी वजह यह भी है कि लोग डरते हुए ग्यारहवीं देते हैं कि कहीं पीर नाराज़ होकर कोई हानि न पहुंचाए यह बहुत बड़ा शिर्क है अल्लाह इससे बचाए। आमीन सुम्म आमीन।

आख़िरी फ़ैसला

इसमें सन्देह नहीं कि जिनके नाम की ग्यारहवीं दी जाती है अगर वे ग्यारहवीं पर नाराज़ हों तो ग्यारहवीं सवाब का काम नहीं बल्कि वबाले जान है यह एक ऐसा अटल फ़ैसला है कि इसके होते हुए इधर उधर जाने की ज़रूरत नहीं। ऐकेश्वरवादी विद्वानों को अल्लाह तआला भलाई प्रदान करे कि उन्होंने हर पहलू से मसला ग्यारहवीं पर रौशनी डाली। यहां तक कि ग्यारहवीं वाले पीर साहब से भी इस बात का सुबूत दिया कि ग्यारहवीं जाइज़ नहीं अब भी कोई ग्यारहवीं से बाज़ न आए तो फिर उसका मामला ख़ुदा के सुपुर्द। अल्लाह तआला अपने रसूल को फ़रमाते हैं :

﴿اِنَّکَ لَا تَهْدِیْ مَنْ اَحْبَبْتَ وَلٰکِنَّ اللّٰهَ یَهْدِیْ مَنْ یَّشَآءُ﴾ (پ۲۰ع۹)

अर्थात (ऐ मुहम्मद सल्ल०) तू हिदायत नहीं कर सकता जिसको दोस्त रखे तू लेकिन ख़ुदा जिसको चाहे हिदायत करता है।

इस बात का सुबूत कि ग्यारहवीं वाले पीर साहब के निकट ग्यारहवीं जाइज़ नहीं। उसके लिए मौलाना अब्दुल क़ुद्दूस साहब गुड़गान्वी (नाज़िम दारुल हदीस मुहम्मदिया कोट राधा किशन लाहौर) का निम्न लेख पढ़िए और अपनी तसल्ली कीजिए। यह लेख तंज़ीम पत्रिका अहले हदीस में भी प्रकाशित हो चुका है। इसमें ग्यारहवीं के जायज़ न होने के और तर्क भी हैं लेकिन महत्वपर्णू चीज़ इसमें ग्यारहवीं के मानने वालों के लिए पीर साहब का इरशाद है।

शाह जीलानी रह० और ग्यारहवीं

आदर्णीय पाठको! हज़रत महबूब सुब्हानी शैख़ अब्दुल क़ादिर जीलानी रह० छठी सदी हिजरी के वह महान बुज़ुर्ग हैं कि जिनकी पाक ज़ात से उम्मते मुहम्मदिया को काफ़ी लाभ पहुंचा है। हम शाह जीलानी रह० और तमाम औलिया अल्लाह को अल्लाह तआला के भले बन्दे और बुज़ुर्ग मानते हैं। उनकी मुहब्बत को ईमान का अंश समझते हैं और उनकी शान में आलोचना करने वाले को अल्लाह तआला का दुश्मन समझते हैं लेकिन औलिया अल्लाह की मुहब्बत का सही पैमाना यही है कि किताब व सुन्नत की रौशनी में उनका अनुसरण किया जाए और जिन चीज़ों से उन बुज़ुर्गों ने मना किया है उनसे रुका जाए और उसके अलावा मुहब्बत का कोई पैमाना निश्चित करना सही नहीं। हज़रत ईसा बहुत बड़े पैग़म्बर हुए हैं मुसलमान उनको अल्लाह तआला का पाक रसूल और रूहुल्लाह मानते हैं मगर ईसाइयों ने हज़रत ईसा अलैहिस्सलाम की प्रशंसा में इतनी अतिश्योक्ति की है कि उनको इब्नुल्लाह (अल्लाह का बेटा) बना दिया। अब अगर कोई मुसलमान हज़रत ईसा को इब्नुल्लाह (अल्लाह का बेटा) न कहे तो ईसाई उस पर हज़रत ईसा अलैहिस्सलाम के अपमान का फ़तवा लगा देते हैं और कहते हैं कि मुसलमान हज़रत ईसा के दर्जे को घटाते हैं। ठीक यही हाल हद से बढ़ जाने वाले हज़रात का है कि अगर कोई व्यक्ति उनके गढ़े हुए अक़ीदा को न माने तो उस पर औलिया अल्लाह के अपमान का फ़तवा लगा देते हैं।

ग्यारहवीं मानने वाले

"ग्यारहवीं" मनाने की यह वजह बयान करते हैं कि यह हज़रत शाह अब्दुल क़ादिर जीलानी रह० के विसाल का दिन है और विसाल का दिन

मनाना जाइज़ है। यह एक ऐसा दावा है जिसकी पुष्टि क़ुरआन व हदीस, सहाबा और इमाम व मुज्तहिदीन के अमल से नहीं होती। अगर इस्लाम में विसाल का दिन मनाने की इजाज़त होती तो हज़रत नबी करीम सल्ल० अंबिया किराम के विसाल के दिन की यादगार मनाते या सहाबा किराम हज़रत सय्यदुल अंबिया सल्ल० के विसाल के दिन की यादगार मनाते मगर न आपने ऐसा किया और न सहाबा किराम ने और न इमामों ही ने ऐसी यादगार मनाने की इजाज़त दी है। बल्कि स्वयं शाह जीलानी रह० ने विसाल के दिन की यादगार मनाने को नाजाइज़ क़रार दिया है। आप फ़रमाते हैं :

" لو جاز ان يتخذ يوم موته يوم مصيبة لكان يوم الاثنين اولىٰ
بذلک اذ قبض الله تعالىٰ فيه نبيه محمدا ﷺ و كذلک ابو بكر
الصديق قبض فيه ثم لو جاز ان يتخذ هذا اليوم مصيبة لا تخذه
الصحابة والتابعون لانهم اقرب اليه منا واخص به. (غنية الطالبين)

"अगर इमाम हुसैन की शहादत के दिन को रंज व ग़म का दिन मनाना जाइज़ होता तो यह बहुत ही मुनासिब था कि पीर के दिन को बहुत ही रंज व ग़म का दिन तै किया जाता क्योंकि इस दिन ही हज़रत नबी करीम सल्ल० और हज़रत अबू बक्र रज़ि० ने वफ़ात पाई है। मगर न यह जाइज़ है न वह। और अगर यह चीज़ जाइज़ होती तो सहाबा किराम और ताबईन पीर के दिन को रंज व ग़म का दिन तै कर लेते क्योंकि सबसे ज़्यादा हज़रत नबी करीम सल्ल० के क़रीब और आपके साथ ख़ास संबंध रखने वाले यही बुज़ुर्ग थे।"

पाठक गणो! आपने देखा कि स्वयं पीराने पीर रह० किसी की वफ़ात के दिन को यादगार मनाना नाजाइज़ ठहराते हैं। पीर साहब के इस फ़रमान से आपके विसाल के दिन ग्यारहवीं मनाना भी नाजाइज़ हो गया।

शाह जीलानी की वफ़ात की तारीख़

आपकी वफ़ात की तारीख़ में इतिहासकों ने बहुत ही मतभेद किया है। कोई रबीउस्सानी की आठ तारीख़ बताता है कोई नौ। कोई दस कोई ग्यारह और कोई सतरह। फिर इस पर मज़े की बात यह है कि हमारे यहां पर ग्यारहवीं हर महीने में मनाई जाती है और फिर उसमें कुछ ऐसे काम भी अंजाम दिए जाते हैं कि जो अल्लाह तआला के लिए ख़ास हैं। नज़र व नियाज़ आर्थिक इबादत है और तमाम इबादतों का हक़दार सिर्फ़ अल्लाह तआला ही है। "अत्तहिय्यातु लिल्लाहि वस्सलावातु वत्तय्यिबातु" (मुत्तफ़िक़ अलैहि) तमाम ज़बानी, शारीरिक और आर्थिक इबादतें सिर्फ़ अल्लाह ही के लिए हैं।

याद रहे कि ग्यारहवीं को पीर साहब की नियाज़ के तौर पर मनाया जाता है और अगर सवाब पहुंचाने के तौर पर मनाई जाए तो इसमें तारीख़ के निर्धारण की ज़रूरत नहीं। सवाब पहुंचाना हर फ़रीक़ के नज़दीक सही है।

ग़ालियों (हद से गुज़रने वाले) के तर्क और उनके जवाब

ग़ाली (हद से गुज़रने वाले) लोगों ने पीर साहब रह० की ग्यारहवीं के जायज़ होने में कुछ तर्क भी दिए हैं जिनमें उन्होंने तरह तरह के अर्थापन से काम लिया है उनको आपकी सूचना के लिए प्रस्तुत किया जाता है।

﴿ والفجر وليال عشر والشفع والوتر﴾ (پ ۳۰)

क़सम है फ़ज्र की और दस रातों की और जुफ़्त (युग्म) की और ताक़ (विषम) की।

कुछ ग़ालियों ने इस आयत से ग्यारहवीं की क़सम तात्पर्य ली है।

जवाब

इस आयत से किसी भी टीकाकार ने ग्यारहवीं तात्पर्य नहीं लिया। क़ुरआन शरीफ़ की टीका अपनी राय से करना बहुत बड़ा गुनाह है बल्कि अपनी राय से टीका करने वाले को रसूले ख़ुदा सल्ल० ने जहन्नमी क़रार दिया है।

आपने फ़रमाया :

من قال في القرآن برأيه فليتبوء مقعده من النار (ترمذی)

जो व्यक्ति अपनी राय से क़ुरआन में कुछ कहे तो उसका ठिकाना जहन्नम है।

अपने ग़लत दृष्टिकोण की मज़बूती के लिए इस आयत को ग़लत और बे मौक़ा इस्तेमाल करना क़ुरआन शरीफ़ की खुली दुश्मनी है। आज

अल्लाह की पाक किताब ऐसे ही लोगों से ख़िताब कर रही है :

आइए इस आयत की टीका स्वयं हज़रत नबी अकरम सल्ल० की ज़बानी सुनिए। आप फ़रमाते हैं :

अश्र से तात्पर्य ईदुल अज़हा के दस दिन हैं। और वित्र से तात्पर्य अरफ़ा का दिन और शफ़अ से तात्पर्य क़ुरबानी का दिन है।

(मुसनद अहमद)

और मौलवी नईमुद्दीन साहब बरेलवी इस आयत की टीका में हज़रत इब्ने अब्बास रज़ि० का कथन नक़ल करते हैं कि :

"उनसे तात्पर्य ज़िल हिज्जा की पहली दस रातें हैं क्योंकि यह ज़माना हज के कर्मों में व्यस्त होने का है और हदीस शरीफ़ में इस अशरा की बहुत श्रेष्ठता आई है। और जुफ़्त (युग्म) से तात्पर्य स्रष्टि और ताक़ (विषम) से तात्पर्य अल्लाह तआला है।" (देखें अनुवाद क़ुरआन शरीफ़ मौलाना अहमद रज़ा ख़ां बरेलवी)